

पहली यह बात ली। सामायिक होती किसे है ? जिसे प्रथम सम्यग्दर्शन हुआ हो। शुद्ध आत्मा परमानन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, ऐसा आत्मा अनुभव में आया हो, वह सम्यग्दृष्टि ( है, और ) उसे सामायिक होती है। सम्यग्दृष्टि बिना सामायिक नहीं होती। इसलिए सम्यग्दृष्टि की व्याख्या ऐसी है। त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्यवस्तु सत्ता सत् है, उसके सन्मुख होकर, उसकी अनुभव में प्रतीति ( होना ), इसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन होता है, उसे सामायिक होती है, वरना उसे सामायिक नहीं होती।

**श्लोकार्था :** यदि शुद्धदृष्टिवन्त ( -सम्यग्दृष्टि ) जीव ऐसा समझता है... सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा समझता है, कि परम मुनि को... तप में मुख्य ये होते हैं। तपस्या, वह मुख्य नहीं होती। आहाहा ! तप में भी भगवान पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्यघन, तप में भी उसका लक्ष्य, दृष्टि और ध्येय वहाँ है। आहाहा ! तप में, नियम में,... कोई नियम लिया हो तो उस नियम में भी दृष्टि का विषय वह ध्रुव सदा होता है। ध्रुव के ऊपर की दृष्टि हटती नहीं। आहाहा ! कहो, उसे सामायिक होती है। अभी तो सम्यक्त्व क्या, इसकी खबर न हो और सामायिक करके बैठे। आहाहा !

**नियम में, संयम में...** आत्मा में अन्दर 'सं'—सम्यक् प्रकार से सम्यग्दर्शन होकर 'यम' अर्थात् आत्मलीनता हो, उस संयम में भी सम्यग्दर्शन मुख्य है। उसमें धर्मी ध्रुव, वह दृष्टि में मुख्य है। आहाहा ! त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा जो है, जो अनन्त चैतन्य रत्नाकर, अनन्त चैतन्य के रत्न का भरपूर आकर अर्थात् समुद्र, ऐसा यह चैतन्य, यह उसे मुख्य होता है। **संयम में...** भी मुख्य वह होता है। **सत्चारित्र...** सच्चा चारित्र—स्वरूप में

१- अभिराम=मनोहर; सुन्दर। ( भवभय के हरनेवाले ऐसे इस भावि तीर्थकर ने राग का नाश किया होने से वह मनोहर है। )

रमणता, उसमें भी मुख्य तो भगवान् द्रव्य आत्मा होता है। वह यदि न हो तो चारित्र-फारित्र होता नहीं। आहाहा! सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है... इन सबमें आत्मा ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य रहता है। समझ में आया इसमें ?

तप में, नियम में, संयम में और सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है... एक समय भी ध्रुव की दृष्टि हटती नहीं। ध्रुव जो चैतन्य है, उसमें इसकी मुख्यता है। आहा! वह यदि न हो तो वह चारित्र नहीं है, संयम नहीं है, कुछ नहीं है। आहाहा! उसमें सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है... सदा आत्मा संयम में, सम्यग्दर्शन में, चारित्र में, नियम में आत्मा त्रिकाली ही मुख्य रहता है। दृष्टि का विषय वह है। उसकी ही ऊर्ध्वता अर्थात् मुख्यता होती है। आहाहा! यदि वह शुद्ध आत्मा पवित्र परमात्मा की दृष्टि नहीं और उसका मुख्यपना नहीं आया तो वह सब बिना एक के शून्य है। यह सब व्रत करे, तप करे, क्रियाकाण्ड करे, वह सब संसार में भटकने के हैं। आहाहा! ऐसा है।

उस सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है... आहाहा! एक समय भी ध्रुव में से दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! ध्रुव को ध्येय में लेकर ध्रुव का जो अनुभव किया, वह ध्रुव दृष्टि में से एक समय भी, चाहे वह संयम, चारित्र, नियम आदि हो, परन्तु उसमें से वह ध्रुव है, वह हटता नहीं। ध्रुव है, वह दृष्टि में से हटता नहीं और ध्रुव में से दृष्टि हटे तो मिथ्यादृष्टि हो जाए। आहाहा! ( अर्थात् प्रत्येक कार्य में निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है )... स्पष्टीकरण किया। ( अर्थात् प्रत्येक कार्य में निरन्तर... निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य... ) शुद्ध त्रिकाली द्रव्य, आनन्दस्वरूप प्रभु, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अनन्त चैतन्य रत्न से भरपूर भगवान्; उस प्रत्येक क्रिया में उसकी मुख्यता और ऊर्ध्वता रहती है। उसकी मुख्यता और ऊर्ध्वता न हो तो एक भी चीज़ सच्ची नहीं होती। आहाहा!

तो ( ऐसा सिद्ध हुआ कि )... तो ऐसा साबित हुआ कि राग के नाश के कारण... आहाहा! राग-द्वेष के विकल्पों के नाश के लिये अभिराम ऐसे उस भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता निश्चित है। आहाहा! तीर्थकर होनेवाले हैं। उन्हें—भावी तीर्थाधिनाथ को भी ऐसी समता होती है, तब वे तीर्थकर होते हैं। आहाहा! ऐसी समता कि अन्तर में चारित्र में, संयम में, नियम में, दृष्टि में, ध्येय में, सबमें आत्मा मुख्य रहता है। ऐसे भावी नाथ को राग-नाश के लिये यह उपाय है। आहाहा! बात तो

अलग प्रकार की है। सुनना कठिन पड़े। एक तो यह क्या है परन्तु इस प्रकार का ? और वह भी लिये कौन है ? **भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ...** इसलिए ऐसा लगता है कि स्वयं ग्रन्थकार / टीकाकार भी तीर्थकर होनेवाले हैं। आहाहा ! बहुत निर्मल।

पद्मप्रभमलधारिदेव, यह फोटो है। मुनि अन्तर में परमपारिणामिकस्वभाव में त्रिकाली सहज पर की अपेक्षा बिना स्वाभाविक परमपारिणामिक स्वभावभाव में वे लीन होते हैं। आहाहा ! वे लीन होते हैं, यह चारित्र और संयम कहा जाता है। परमस्वभाव में लीन होते हैं, उसे सामायिक, संयम, तप उसे कहा जाता है; वही सब लंघन है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। ऐसे भावी भवमयहर, भव के भय को हरनेवाले। आहाहा ! ऐसे भावी तीर्थाधिनाथ को अब भव ही नहीं है, कहते हैं। एकाध भव में तीर्थकर होकर मोक्ष में जानेवाले हैं। आहाहा !

**भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता निश्चित है।** समता अर्थात् वीतरागता। शुद्ध जो वीतरागस्वरूप आत्मा; आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा ! उसकी दृष्टि नहीं, इसलिए राग-द्वेष और पुण्य-पाप पर्याय में खड़े होते हैं, परन्तु वीतरागस्वरूप की दृष्टि हुई तो वीतराग ही उत्पन्न होता है। वीतरागता, वह समता है। समता कहो या वीतरागता कहो। वीतरागता कहो या समता कहो। उस समता का लाभ, वह सामायिक है। ऐसी अन्तर वीतरागदशा, वीतरागस्वरूप चैतन्य के अवलम्बन से हुई वीतरागदशा, वह सामायिक है। ओहोहो ! यहाँ तो साधारण मनुष्य ने सामायिक का रूप दे दिया। पाँच वर्ष की लड़की हो तो सामायिक करने बैठे। हो गयी सामायिक। पाँच सामायिक करे, फिर ईनाम में कुछ कुछ दे। आहाहा !

अरे ! भाई ! तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी प्रभु, अनन्त केवली, अनन्त तीर्थाधिनाथ तीर्थकर सामायिक उसे कहते हैं, आहाहा ! अन्तर चैतन्यस्वरूप प्रकाश का पुंज प्रभु, उस प्रकाश के पुंज में प्रकाश को प्रगट करके, समता और वीतरागता साथ में लेकर स्थिर हो, उसे सामायिक व्रत कहा जाता है। आहाहा ! यह कलश हो गया। अब गाथा।

## गाथा-१२८

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेइ दु ।  
 तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे ॥१२८॥  
 यस्य रागस्तु द्वेषस्तु विकृतिं न जनयति तु ।  
 तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलिशासने ॥१२८॥

इह हि रागद्वेषाभावादपरिस्पन्दरूपत्वं भवतीत्युक्तम् । यस्य परमवीतरागसंयमिनः पापाट-  
 वीपाकस्य रागो वा द्वेषो वा विकृतिं नावतरति, तस्य महानन्दाभिलाषिणः जीवस्य पञ्चेन्द्रियप्रसर-  
 वर्जितगात्रमात्रपरिग्रहस्य सामायिकनामव्रतं शाश्वतं भवतीति केवलानां शासने प्रसिद्धं भवतीति ।

नहिं राग अथवा द्वेष से जो संयमी विकृति लहे ।  
 स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१२८॥

अन्वयार्थ : [ यस्य ] जिसे [ रागः तु ] राग या [ द्वेषः तु ] द्वेष ( उत्पन्न न होता हुआ ) [ विकृतिं ] विकृति [ न तु जनयति ] उत्पन्न नहीं करता, [ तस्य ] उसे [ सामायिकं ] सामायिक [ स्थायि ] स्थायी है [ इति केवलिशासने ] ऐसा केवली के शासन में कहा है ।

टीका : यहाँ राग-द्वेष के अभाव से <sup>१</sup>अपरिस्पन्दरूपता होती है, ऐसा कहा है ।

पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसे जिस परमवीतराग संयमी को राग या द्वेष \*विकृति उत्पन्न नहीं करता, उस महा आनन्द के अभिलाषी जीव को— कि जिसे पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह है उसे—सामायिक नाम का व्रत शाश्वत है, ऐसा केवलियों के शासन में प्रसिद्ध है ।

१. अपरिस्पन्दरूपता=अकम्पता; अक्षुब्धता; समता ।

\* विकृति=विकार; स्वाभाविक परिणति से विरुद्ध परिणति । [ परमवीतरागसंयमी को समतास्वभावी शुद्धात्मद्रव्य का दृढ़ आश्रय होने से विकृतिभूत ( विभावभूत ) विषमता ( राग-द्वेष परिणति ) नहीं होती, परन्तु प्रकृतिभूत ( स्वभावभूत ) समतापरिणाम होते हैं । ]

## गाथा - १२८ पर प्रवचन

१२८ वीं गाथा ।

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेइ दु ।

तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे ॥१२८॥

नहिं राग अथवा द्वेष से जो संयमी विकृति लहे ।

स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१२८ ॥

आहाहा! केवली भगवान त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा, ऐसा मुनिराज कहते हैं। अपने घर की बात नहीं करते। केवली भगवान त्रिलोकनाथ उसे सामायिक कहते हैं।

नहिं राग अथवा द्वेष से जो संयमी विकृति लहे ।

स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१२८ ॥

यहाँ राग-द्वेष के अभाव से... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प जो उठता है, वह सब सामायिक का अभाव है। आहाहा! राग-द्वेष के अभाव से अपरिस्पन्दरूपता... अर्थात् आत्मा में अकम्पता;... स्थिरता। आहाहा! नीचे (फुटनोट) अकम्पता; अक्षुब्धता; समता। है न? राग-द्वेष के अभाव से... सूक्ष्म राग-द्वेष का भी जहाँ अभाव है, इसलिए अपरिस्पन्दरूपता... जहाँ सुन्दर अकम्पता है। यह अकम्प कोई योग की अपेक्षा का नहीं है; यह अकम्पता राग के अभाव की स्थिरता की अपेक्षा से है। क्या कहा, समझ में आय?

अकम्पता दो प्रकार से है : एक अन्दर योग कम्पन है, उसे भी आंशिक घटाना, वह अकम्प है और यहाँ अकम्पता-स्थिरता करना, उसे स्थिरता में अस्थिर न हो, वह अकम्प है। आहाहा! ऐसा कब सुने? कब समझे? कब दृष्टि में ले? और कब उसमें रमे? कब इसके भव का अभाव हो? आहाहा! (यह किये बिना) भव का अभाव नहीं होता।

राग-द्वेष के अभाव से... वीतरागता जो प्रगटे, उसे यहाँ अपरिस्पंद कहते हैं। आहाहा! समता। दुनिया की अनुकूल और प्रतिकूल, सारी दुनिया के सामने धर्मी-समकिति को सामायिक में वीतरागता होती है। किसी के प्रति ज्ञेय में अनुकूल और

प्रतिकूल वह मानता नहीं है। स्व के अतिरिक्त ज्ञेय जितनी चीज़ है, उन सब ज्ञेयों के दो भाग नहीं है अर्थात् कि एक ठीक है और एक अठीक है—ऐसे दो भाग नहीं है। आहाहा! सब ज्ञेय हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थकर भी ज्ञेय हैं, स्त्री ज्ञेय है, निगोद के जीव ज्ञेय हैं, सिद्ध के जीव ज्ञेय हैं। वे सब जीव ज्ञेय हैं। आहाहा! उस ज्ञेय में स्थिर न होकर ज्ञान में स्थिर होता है। वह भले ज्ञेय का ज्ञान ज्ञानाकार यहाँ हो, ज्ञेयसम्बन्धी का ज्ञान ज्ञानाकार हो, उसमें स्थिर हो, वह अपरिस्पन्द है। आहाहा! वह अकम्प स्थिर प्रभु में हुआ। प्रभु स्वयं अकम्प है, वीतरागस्वरूप है। आहाहा! कैसे जँचे? स्वयं अभी वीतरागस्वरूप है, उसका स्वभाव वीतराग है। सर्वज्ञस्वभाव है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, शान्तरस से पूर्ण भरपूर है। आहाहा! यह इसे पर्याय में बैठना चाहिए। वस्तु तो वस्तु है। वस्तु में कुछ घट-बढ़ नहीं है, विकार नहीं है, हीनता नहीं है।

‘बहिन’ के शब्द में आता है। ‘कंचन को जंग नहीं।’ बहिनश्री के वचनमृत में आता है। कंचन को जंग नहीं होती, अग्नि में दीमक नहीं होती; उसी प्रकार प्रभु में अपूर्णता और अशुद्धता नहीं होती। आहाहा! ऐसा अन्दर भगवान आत्मा; जैसे अग्नि को दीमक नहीं होती, वैसे स्वरूप में उसे कोई खा जाए, ऐसी रागादि वस्तु नहीं होती। आहाहा! कंचन को जंग नहीं होती; वैसे ही भगवान पूर्णानन्द के नाथ को मलिनता और जंग अन्दर वस्तु-द्रव्य में नहीं होती। आहाहा!

ऐसा जो द्रव्य अन्दर भगवान विराजता है, उसका अपरिस्पन्दरूप पर्याय में उसका अकम्पपना (प्रगट होना)। अपरिस्पन्दरूप तो है। वस्तुरूप से अपरिस्पन्दरूप है। प्रभु आत्मा का अकम्पपना है। आहाहा! परन्तु पर्याय में अपरिस्पन्दता होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसका नाम सामायिक। सामायिक-बामायिक की होगी या नहीं? सम्प्रदाय की द्रव्य सामायिक। हमने भी की थी। सामायिक करते, प्रतिक्रमण करते। आठ दिन पर्यूषण, हों! पर्यूषण। आठ दिन पर्यूषण... सात-आठ दुकान में जितने अपने स्थानकवासी हों, वे सब आवें, एकत्रित हों, पश्चात् मैं प्रतिक्रमण कराता था। तब... तब (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष की बात है। सामायिक करके प्रतिक्रमण किया, इसलिए सबको ओहो! फिर एक गायन गाते। ‘देखो रे देखो जैनी कैसे व्रतधारी।’ ऐसा गायन आता है। यह गायन आता है। यह तो (संवत्) १९६५ के वर्ष की बात है। यह सब हो जाए, फिर बैठे। दुकान में बैठे।

मैं फिर ऐसे बाहर वह बैठा होवे न, पड़ा होवे न ? क्या कहलाता है, वह बैठने का ? वहाँ बैठकर गायन गाता । सुने । कुछ खबर नहीं होती । भाषा बोली... आहाहा !

यहाँ परमात्मा कहते हैं, प्रभु ! तेरा रूप अकम्प है, हों ! नाथ ! पुण्य-पाप में आ जाए, अस्थिरता हो, वह तेरा स्वरूप नहीं है । दया, दान, व्रत के परिणाम आवे, वह तेरा स्वरूप नहीं है । आहाहा ! भगवान ऐसा कहते हैं, मेरा स्मरण करे, वह भी सामायिक और अकम्पता नहीं है । आहाहा ! तेरा स्मरण कर । अन्दर प्रभु चिदानन्दस्वरूप, अखण्डानन्द-स्वरूप है, नित्य है, नित्य सत्ता है, अस्तित्वाली चीज़ है । उसकी उत्पत्ति का अभाव है । अनादि है, उसकी उत्पत्ति क्या ? है, उसका नाश क्या ? और है, उसके स्वभाव से खाली कैसे हो ? आहाहा ! ऐसे अपरिस्पन्दरूप । यहाँ तो पर्याय की बात है ।

**अपरिस्पन्दरूपता होती है,...** यह तो पर्याय की बात है, हों ! अपरिस्पन्दरूप स्वयं भगवान है । अकम्प, स्थिर, ध्रुव ( है ), उसका आश्रय लेकर, उसका ध्यान करके, उसका अवलम्बन करके जो पर्याय में अकम्पता-स्थिरता हो, उसे वीतरागता कहकर उसे सामायिक कही है । आहाहा ! अब ऐसा कठिन कहे... ऐसी सामायिक नहीं होती । परन्तु यह सामायिक करते-करते होती है या नहीं ? ऐसी सामायिक पहली नहीं होती, परन्तु यह दूसरी व्यवहार सामायिक करे । जहर खाते-खाते अमृत हो, ऐसी बात है ।

**मुमुक्षु :** थोड़ा जहर दे तो अमृतरूप से काम दे ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बिल्कुल काम नहीं दे । जहर मार डाले । थोड़ा जहर मार डाले । अमृत का काम जरा भी नहीं करता । जिसकी जाति अलग है, जिसका फल अलग है, जिसका लक्षण अलग है । आहाहा ! भगवान आत्मा और विकारी परिणाम, राग और द्वेष, दोनों के लक्षण अलग, दोनों की जाति अलग, दोनों की स्थिति अलग । यह विकार है, वह थोड़े काल रहता है और यह वस्तु भगवान है, वह तो अन्दर त्रिकाल है । आहाहा !

**यहाँ राग-द्वेष के अभाव से अपरिस्पन्दरूपता होती है, ऐसा कहा है ।** अपरिस्पन्दता का अर्थ नीचे किया है । **अकम्पता; अक्षुब्धता; समता ।** वीतरागता । जैसी वीतरागता स्वभाव से है, वैसी पर्याय में वीतरागता प्रगट करे, उसका नाम यहाँ सामायिक कहा जाता है । आहाहा !

**मुमुक्षु :** यह तो केवली के शासन में ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** केवली ने कहा हुआ है कि इसका नाम सामायिक। केवली शासन में केवली ने ऐसा कहा है (कि) इसका नाम सामायिक है। केवली को सामायिक है - ऐसा नहीं। केवली ने ऐसा कहा कि इसका नाम सामायिक है। है न, देखो न! 'तस्स सामाङ्गं ठाङ् इदि केवलिसासणे' पाठ में हे न? केवली शासन में ऐसा कहा है। पाठ ऐसा है न! भगवान के शासन में, तीर्थकर के शासन में, तीर्थकरदेव के मार्ग में ऐसा कहा है। यह कहा है भगवान ने। कहा है, यह मार्ग भिन्न है। आहाहा!

**पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान...** ऐसे जो परम वीतराग संयमी.... आहाहा! यहाँ तो परम वीतराग मुनि को लिया है। परम वीतराग संयमी कैसे हैं? परम वीतराग संयमी (कैसे हैं)? कि **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान...** पापरूपी अटवी-वन को जलाने को तो अग्नि-समान हैं। आहाहा! राग की उत्पत्ति तो नहीं होती, क्योंकि वे आत्मा में वीतरागता में स्थित हैं। आहाहा! उसका नाम यहाँ सामायिक और उसका नाम वीतरागता है। आहाहा!

**परमवीतराग संयमी को राग या द्वेष विकृति उत्पन्न नहीं करता,...** आहाहा! किसे? **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसे जिस परमवीतराग...** मुनि। मुनि की बात है, हों! केवली की नहीं। अन्दर परम वीतरागस्वरूप प्रगट हुआ है। वीतराग की मूर्ति प्रभु त्रिकाल अनादि-अनन्त है। वीतरागता का कन्द ही आत्मा है। उसका अवलम्बन लेकर पर्याय में जो वीतरागता प्रगट हुई, वह वीतरागता राग-द्वेष-विकृति उत्पन्न नहीं करती। उस समता के राग-द्वेष नहीं होते। आहाहा! ऐसे शास्त्र हैं, ऐसी पुस्तकें तो रखी हैं, परन्तु उसे पढ़ने का समय चाहिए। आहाहा! और कुशास्त्र, कथायें-विकथायें, कुकथा पढ़े, उसमें काल व्यतीत करता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वीतरागी मुनि को अपरिस्पन्दता होती है। क्योंकि **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसे जिस परमवीतराग संयमी को राग या द्वेष विकृति उत्पन्न नहीं करता, 'विकार; स्वाभाविक परिणति से विरुद्ध परिणति.'** विकृति अर्थात् स्वभाव परिणति जो वीतराग परिणति। परिणति अर्थात् पर्याय। वीतरागी स्वरूप त्रिकाल, उसे पर्याय / अवस्था में वीतरागपना लाना, उसका नाम वीतराग परिणति है। उस वीतराग स्वाभाविक परिणति से विरुद्ध परिणति। [ परमवीतरागसंयमी को समतास्वभावी



शुद्धात्मद्रव्य का... ] समतास्वभावी। आहाहा! भगवान स्वयं वीतरागस्वभावी है, समतास्वभावी है। वह समता में जाए, उसे समता मिले। उसे सामायिक हो। सं—आय। समता की आय अर्थात् लाभ। सामायिक अर्थात् समता की आय-लाभ। वह स्वरूप में जाए, तो उसे समता का लाभ मिलता। आहाहा!

[ शुद्धात्मद्रव्य का दृढ़ आश्रय होने से... ] आहाहा! [ परमवीतरागसंयमी को... ] नीचे (फुटनोट) [ समतास्वभावी शुद्धात्मद्रव्य का दृढ़ आश्रय होने से... ] त्रिकाली का दृढ़ आश्रय होने से [ विकृतिभूत ( विभावभूत ) विषमता ( राग-द्वेष परिणति ) नहीं होती, परन्तु प्रकृतिभूत ( स्वभावभूत ) समतापरिणाम होते हैं। ] प्रकृति अर्थात्? स्वभाव। यहाँ प्रकृति अर्थात् कर्मप्रकृति, वह नहीं। विकृति अर्थात् विकार और दुःख तथा प्रकृति अर्थात् आत्मा का स्वभाव। आहाहा! यह प्रवचनसार में आ गया। प्रवचनसार में वीतराग... लिखा है। प्रवचनसार २१४ गाथा। उसमें यह आया है। आहाहा!

[ परन्तु प्रकृतिभूत ( स्वभावभूत ) समतापरिणाम होते हैं। ] विकृति, वह राग-द्वेष के विकारी परिणाम हैं और प्रकृति अर्थात् जीव का निजस्वभाव। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। लोग नहीं कहते? कि तेरी प्रकृति ऐसी है। ऐसा नहीं कहते? तेरी प्रकृति ऐसी है या तेरा स्वभाव ऐसा है। उसी प्रकार आत्मा की प्रकृति ऐसी है। आहाहा! वीतरागस्वरूपी प्रकृति आत्मा की है। उस प्रकृति का स्वभाव जिसने पकड़ा और पर्याय में प्रगट किया, उसे विकृति के अभाव में प्रकृति का भाव उत्पन्न होता है। आहाहा! अनादिकाल से विकार की प्रकृति उत्पन्न होती है। यह स्वभाव की प्रकृति है। विकार की प्रकृति को विकृति कहा। स्वभाव की प्रकृति को स्वभाव कहा। आहाहा! चैतन्यमूर्ति भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसके अवलम्बन से जो दशा होती है, उसे प्रकृति अर्थात् स्वभाव कहते हैं। आहाहा! और उससे विरुद्ध राग-द्वेष उत्पन्न हो, उसे विकृति कहते हैं। विकृतिवाले को सामायिक नहीं होती। प्रकृतिवाले को सामायिक होती है। आहाहा! ऐसी बड़ी महंगी सामायिक करना नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .... किया हो तब तो ठीक परन्तु...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वालों ने सम्यग्दर्शन को और सामायिक को बहुत महंगा कर डाला। जो उल्टा था सस्ता, उल्टा सस्ता था। आहाहा! अरे! प्रभु! मार्ग

तो यह है। आहाहा! कोई शरण नहीं, बापू! देह छूटने पर यदि आत्मा की चीज़ आनन्दकन्द प्रभु वीतरागस्वरूप को पकड़ा नहीं हो तो मरते हुए शरण किसी का नहीं। आहाहा! गणेशप्रसाद वर्णी बेचारे मरते हुए बोल गये। क्षुधा-तृषा बहुत लगी और खड़े होकर पानी पीने आये। क्षुल्लक थे, क्षुल्लक। अरे रे! आत्मा का शरण है, ऐसा कहा। उन्होंने आत्मा तो जाना नहीं था। आहाहा! कठिन काम है, भाई!

जिसने ज्ञानज्योति द्वारा... चैतन्य के प्रकाश द्वारा चैतन्य प्रकाश का पुंज है, उस पर दृष्टि पड़ने से प्रकाश प्रगट हुआ, उस द्वारा पापसमूहरूपी घोर अन्धकार का नाश किया। आहाहा!

मुमुक्षु : ऊपर की टीका बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस महा आनन्द के अभिलाषी जीव को—विकृति उत्पन्न नहीं होती। महा आनन्द के अभिलाषी जीव को—आहाहा! विकृति किसे उत्पन्न नहीं होती? परमानन्द अतीन्द्रिय आत्मा की जिसे उत्पत्ति हो, उसे विकृति उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! महा आनन्द के अभिलाषी जीव को—कि जिसे पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह... मुनि। मुनि को एक देहमात्र परिग्रह होता है। मुनि को वस्त्र-पात्र नहीं हो सकते। वस्त्र-पात्र वह बाद में इन लोगों ने नये कल्पित शास्त्र बनाये, उनमें डाले हैं। आहाहा! देहमात्र परिग्रह... है? देह छूटती नहीं, बाकी सब चीज़ें छोड़ दी है। आहाहा!

उसे—सामायिक नाम का व्रत शाश्वत है... अर्थात् सच्चा है। ऐसा केवलियों के शासन में प्रसिद्ध है। देखा? केवली परमात्मा के शासन में यह बात सत्य है। बाकी अज्ञानी उनकी कल्पना से माने, वे भटक मरनेवाले हैं। आहाहा! परमात्मा अरिहन्तदेव केवली परमात्मा के शासन में उस सामायिक की यह स्थिति है। आहाहा!

श्लोक-२१३

[ अब इस १२८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: ]

( मंदाक्रांता )

रागद्वेषौ विकृति-मिह तौ नैव कर्तुं समर्थौ,  
ज्ञानज्योतिः-प्रहतदुरितानीक-घोरान्धकारे ।  
आरातीये सहज-परमानन्द-पीयूष-पूरे,  
तस्मिन्नित्ये समरसमये को विधिः को निषेधः ॥२१३॥

( वीरछन्द )

जिसने ज्ञान-ज्योति के द्वारा पाप तिमिर का किया विनाश ।  
परमानन्दामृत का पूर निकट ही करता जहाँ निवास ॥  
उसमें विकृति करने की नहीं राग द्वेष में है सामर्थ्य ।  
समरस मय उस आत्म तत्त्व में क्या विधि है अरु कहाँ निषेध ॥२१३ ॥

श्लोकार्थ : जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापसमूह रूपी घोर अन्धकार का नाश किया है, ऐसा सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर ( अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मतत्त्व ) जहाँ निकट है, वहाँ वे राग-द्वेष विकृति करने में समर्थ नहीं ही हैं । उस नित्य ( शाश्वत् ) समरसमय आत्मतत्त्व में विधि क्या और निषेध क्या है ? ( समरसस्वभावी आत्मतत्त्व में 'यह करने योग्य है और यह छोड़ने योग्य है' ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से उस आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले मुनि को स्वभावपरिणामन होने के कारण समरसरूप परिणाम होते हैं, विधि-निषेध के विकल्परूप—राग-द्वेषरूप परिणाम नहीं होते ) ॥२१३ ॥

श्लोक- २१३ पर प्रवचन

[ अब इस १२८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: ]

रागद्वेषौ विकृति-मिह तौ नैव कर्तुं समर्थौ,  
 ज्ञानज्योतिः-प्रहतदुरितानीक-घोरान्धकारे ।  
 आरातीये सहज-परमानन्द-पीयूष-पूरे,  
 तस्मिन्नित्ये समरसमये को विधिः को निषेधः ॥२१३॥

**श्लोकार्थ :** आहाहा ! जिसने ज्ञानज्योति द्वारा... आहाहा ! चैतन्य के प्रकाश द्वारा । जिसकी नजरें चैतन्य प्रकाश में अन्दर पड़ी है । आहाहा ! जिसकी दृष्टि में चैतन्य प्रकाश, चैतन्य के नूर का पूर दृष्टि में आया है । आहाहा ! उस ज्ञानज्योति द्वारा पापसमूहरूपी घोर अन्धकार का नाश किया है... पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों । आहाहा ! शुभ और अशुभभाव दोनों पाप हैं । दोनों घोर अन्धकार का नाश किया है । आहाहा ! क्या कहते हैं ? ज्ञान के प्रकाश में, चैतन्य ज्ञानप्रकाश मूर्ति का प्रकाश प्रगट किया है और अन्धकार का नाश किया है । उत्पाद और व्यय कहा । आहाहा ! जिसने ज्ञानज्योति द्वारा... राग द्वारा या पुण्य द्वारा नहीं । आहाहा ! व्यवहार के क्रियाकाण्ड द्वारा नहीं । ज्ञानज्योति अन्तरचैतन्य की ज्योति द्वारा पापसमूहरूपी... पाप का ढेर । घोर अन्धकार... ज्ञान का प्रकाश अन्दर एकाग्र होकर जागृत हुआ, वहाँ पापरूपी अन्धकार का नाश किया । आहाहा ! ऐसा सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर... आहाहा ! अब यहाँ कहते हैं कि मुझे दिखता नहीं, ज्ञात नहीं होता । हमें किस प्रकार करना ? परन्तु प्रभु ! दिखता नहीं, ऐसा निर्णय किसने किया ? ज्ञात नहीं होता, ऐसा निर्णय किस सत्ता में हुआ ? किसकी सत्ता में ज्ञात नहीं होता—ऐसा निश्चित किया ? यही कहते हैं कि सत्ता ज्ञान सत्तास्वरूप है । आहाहा ! मैं ज्ञात नहीं होता, इसका अर्थ यह हुआ कि मैं ज्ञात होता हूँ, ऐसा । मैं ज्ञात नहीं होता, यह किसमें हुआ ? यह ज्ञान में हुआ या अन्धकार में हुआ ? आहाहा ! परन्तु समय कहाँ मिले ? यह दुनिया के... आहाहा ! मान, सम्मान, इज्जत, कीर्ति, विषय, भोग और यह सब... आहाहा !

यहाँ कहते हैं जिसने.. आहाहा ! सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर... आहाहा ! भगवान आत्मा स्वाभाविक परमानन्दरूपी अमृत का पूर है वह तो । आहाहा ! जैसे नदी का पूर होता है । दो किनारे जोरदार नदी बहती हो । हमारे उमराला में बड़ी नदी है । बहुत पानी । पानी आवे तो दो-तीन माथोड़ा... समुद्र । वह भी साधारण ।

यहाँ तो कहते हैं कि सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर ( अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभावी

आत्मतत्त्व ) जहाँ निकट है, ... जहाँ भगवान आनन्दस्वरूप नजदीक में है। राग और पुण्य वहाँ नजदीक में नहीं। वे तो दूर हो गये। आहाहा! वह आनन्दस्वरूपी भगवान, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूपी है। वह सुख के लिये बाहर में झपट्टे मारे। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी है। उसकी गन्ध आवे, तब बाहर में देखने जाता है। वन में भटका करता है। उसकी नाभि में कस्तूरी है। उसी प्रकार इस भगवान आत्मा में अन्दर में कस्तूरी—आनन्द है। आहाहा! वह आनन्द यहाँ खोजने जाए—स्त्री में, धूल में, पैसे में, नौकरी में, पैसे कुछ दो-पाँच हजार का वेतन हो। आहाहा! अच्छे कपड़े-बपड़े बराबर पहने। आहाहा! धूल में। धूलधोया में। धूलधोया भी ठीक होता है। धूलधोया देखा है? सोनी की (दुकान के) बाहर धोता है। पहले धोते थे। हमने नजरों से देखा है, सब देखा है। सोनी की दुकान के नजदीक नीचे धूल धोता है। सोने का कण पड़ा हो, पीतल का कण हो। यह अंगूठी होती है न? स्त्रियाँ पहनती हैं। उसमें पीला पट्टा होता है, उसका टुकड़ा पड़ा हो। ये तीनों टुकड़े पीले होते हैं, तथापि उन तीन में से सोने को छाँट लेते हैं, धूलधोया। सब नजरों से देखा है। हमारा भाईबन्ध सोनी था, उसकी दुकान थी। उसकी दुकान के पास धूलधोया धोता था। यह तो बहुत वर्ष पहले की बातें हैं। अस्सी वर्ष पहले की। यह क्या करते हो? उसमें तीनों पीले कण हैं। पीले तो तीनों कण हैं। काँच की बरनी में पीला पट्टा होता है न? चूरा हो गया पीला टुकड़ा होता है। धूल में पड़ा हो और पीतल का बारीक टुकड़ा पड़ा हो और सोने का टुकड़ा कोई मानो पड़ा हो परन्तु तीन में से छाँटकर, वजनदार वह सोना है और वजनरहित काँच तथा पीतल है। आहाहा! ऐसे उनके लक्षण छाँटकर धूलधोया सोना ले लेता है। पहले बहुत था। अब तो अभी...

यहाँ कहते हैं, धूलधोया। धूल—पुण्य और पाप को धोनेवाला और आत्मा के स्वर्ण को पकड़नेवाला, आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभावी परमानन्दरूपी अमृत का पूर ( अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मतत्त्व ) जहाँ निकट है, ... आहाहा! उसकी दशा में, धर्म की दशा में पूर्णानन्द का नाथ निकट है। अज्ञानी की दशा में राग और द्वेष तथा विषय की वासना निकट है। आहाहा! सहज परमानन्दरूपी अमृत का पूर... अर्थात् आत्मतत्त्व। जहाँ निकट है, वहाँ वे राग-द्वेष विकृति करने में समर्थ नहीं ही हैं। आहाहा! आत्मा के परमानन्द के पूर को, अरूपी होने पर भी वस्तु है, सत्ता है, अस्तित्वाली चीज़ है। आहाहा!

उसे पकड़कर राग-द्वेष विकृति करने में समर्थ नहीं ही हैं। उसे राग-द्वेष उत्पन्न हो, अब ऐसी ताकत नहीं है। आहाहा! प्रतिमा बहुत लेते हैं। पाँच प्रतिमा, छह प्रतिमा, सात प्रतिमा। सात प्रतिमावाले बहुत। किसकी प्रतिमा? बापू! अभी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसे खबर भी नहीं। प्रगट हुए बिना सम्यग्दर्शन की प्रतिमा भी नहीं होती। आहाहा! उसे व्रत की प्रतिमा और उसे अनेक प्रकार की... आहाहा! सबको खोटा? तब यह एक ही सच्चा? भाई! यह तो केवली ने कहा हुआ यह एक ही सच्चा है। यह तो सर्वज्ञ भगवान वीतराग ने यह कहा हुआ है। यह एक ही सच्चा है। आहाहा!

जिसने अन्तर के आनन्दस्वरूप में एकाग्रता की है, उसे राग-द्वेष की विकृति उत्पन्न नहीं होती। है? विकृति करने में समर्थ नहीं ही हैं। उस नित्य ( शाश्वत् ) समरसमय आत्मतत्त्व... आहाहा! आत्मा कैसा है? कि परमरसस्वभावी। समरस-वीतरागरस स्वभावी आत्मतत्त्व। आहाहा! उस समरसमय आत्मतत्त्व में विधि क्या और निषेध क्या है? आहाहा! यह है और यह नहीं - यह दो विकल्प वहाँ है? आहाहा! यह है—भगवान पूर्णानन्द है और रागादि नहीं, ऐसे दो के विकल्प का भी वहाँ अवकाश कहाँ है? आहाहा! विधि और निषेध दोनों उसमें है ही नहीं। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ आनन्द का पूर, वह विधि—है और राग-द्वेष नहीं, परन्तु ऐसे है और नहीं का भी जहाँ अवकाश नहीं। आहाहा! क्योंकि है और नहीं, यह भी विकल्प है। आहाहा! ऐसा किस प्रकार का उपदेश! दुनिया से अलग प्रकार।

( समरसस्वभावी आत्मतत्त्व में 'यह करने योग्य है और यह छोड़ने योग्य है' ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से... ) आहाहा! यह अन्तर में जानेयोग्य है और राग छोड़नेयोग्य है, ऐसे विकल्प अन्तर जानेवाले को कुछ नहीं होते। ऐसा विकल्प उसे नहीं होता। ( ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से... ) आहाहा! ( उस आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले मुनि को... ) आहाहा! भगवान आत्मा जहाँ यह है और राग नहीं, यह भी जहाँ विकल्प है, उसे भी छोड़कर जो आत्मा को पकड़ता है। आहाहा! महाप्रभु अमृत के पूर को जहाँ पकड़ता है, ऐसे तत्त्व में विधि और निषेध क्या? यह है और राग-द्वेष नहीं, ऐसे विकल्प वहाँ नहीं है। वहाँ तो वस्तुस्थिति पूरी पड़ी है। आहाहा! यह तो बात-बात में सब अन्तर है। सम्प्रदाय में सुना हो और यह तो पूरा

प्रकार अलग। सम्प्रदाय में तो बातें ऐसी करे कि यह करो... यह करो... सामायिक करो... हम साधु हैं। अरे! प्रभु! विरुद्ध होगा, उसका दुःख सहन करना पड़ेगा, प्रभु! वहाँ कोई सिफारिश चले, ऐसा नहीं है। केवली भगवान ने जो सत्य कहा, उससे यदि विरुद्ध बाँधेगा, उसे नरक और निगोद के दुःख सहन करना पड़ेंगे। वहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलेगी। आहाहा! वह तो सूत्रपाहुड़ की १८ वीं गाथा में कहा नहीं? एक कपड़े का टुकड़ा रखकर साधु है ऐसा मानेगा... आहाहा! अर..र..र! वह निगोद में जाएगा। लहसुन और प्याज में अवतरित होगा... अर..र..र..! प्रभु! प्रभु! केवली के शासन में ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** कुन्दकुन्दाचार्य कड़क हैं, इसलिए ऐसा कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुन्दकुन्दाचार्य जैसा है, वैसा कहते हैं। जैसा केवली ने कहा है, वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। कठोर स्वयं कहते हैं, ऐसा कुछ है नहीं। अनन्त तीर्थकर (यही कहते हैं)। भगवान वहाँ महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वे ऐसा कहते हैं। (वहाँ से) लेकर आये और यह बात उन्होंने की। वहाँ आठ दिन गये। थे तो ज्ञानी। वहाँ गये, इसलिए अधिक स्पष्ट हुआ। अधिक स्पष्ट होकर शास्त्र बनाये। आहाहा! उनमें यह डाला।

प्रभु! तू आनन्द का पूर है न! और है तथा यह नहीं-ऐसा विधि-निषेध भी, प्रभु! तुझमें शोभा नहीं देता। आहाहा! गजब बात है। (‘यह करने योग्य है और यह छोड़ने योग्य है’ ऐसे विधि-निषेध.. ) विधि अर्थात् स्थापन और निषेध अर्थात् नकार। ऐसे ( विकल्परूप स्वभाव न होने से.. ) ऐसा विकल्पस्वभाव तुझमें नहीं है। ( उस आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले... ) उस आत्मतत्त्व को अन्दर दृढ़रूप से अवलम्बन करनेवाले। ( मुनि को स्वभावपरिणमन होने के कारण... ) आहाहा! ऐसा भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसे दृढ़रूप से अन्दर पकड़ा है, इसलिए उसे ( स्वभावपरिणमन होने के कारण... ) स्वाभाविक परिणमन हुआ है। ध्रुव तो था भगवान, परन्तु उसका आश्रय लेकर पर्याय में स्वभाव परिणमन हुआ, वीतरागी परिणमन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन हुआ, अतीन्द्रिय शान्ति का परिणमन हुआ। आहाहा! उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! मुनि को विशेष ( शान्ति होती है )। गृहस्थाश्रम में सामायिक होती है परन्तु थोड़ी शान्ति होती है, थोड़ी शान्ति होती है। मुनि को विशेष शान्ति और उग्र पुरुषार्थ है। अन्तर अवलम्बन का उग्र पुरुषार्थ है। समकित्ती गृहस्थ को, समकित्ती को भी अवलम्बन है

परन्तु थोड़ा है, इसलिए उसे थोड़ा आनन्द है। बाकी राग भी है। मुनि को तो राग है ही नहीं। आहाहा! ऐसा कहा न ?

( मुनि को स्वभावपरिणामन होने के कारण... ) स्वभाव की दशा होने के कारण। आत्मा का जो स्व-स्वभाव, आत्मा वस्तु है, उसका स्वभाव, स्वभाव—अपना भाव। वीतराग और आनन्दकन्द वह स्वभाव है। आहाहा! ( ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से उस आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले मुनि को स्वभावपरिणामन... ) वह स्वभाव परिणामन है। ( होने के कारण समरसरूप परिणाम होते हैं,... ) वहाँ समता... समता... समता ( परिणमित होती है )। अनन्त ज्ञेय प्रतिकूल हों तो भी ज्ञेय में भाग नहीं डालते कि यह ठीक है और यह अठीक। वह तो ज्ञेय है। ज्ञेय में भाग कैसे ? आत्मा के अतिरिक्त दूसरी सब चीजें एक ही प्रकार से ज्ञेय है। ज्ञान में ज्ञात हो, बस। उसके दो भाग नहीं कि यह ज्ञेय ठीक है और यह ज्ञेय अठीक है। आहाहा! ऐसी जिसकी दृष्टि छूट गयी है, अन्तरस्वभाव का परिणामन हुआ है, उसे समरसरूप परिणाम होते हैं। उसे समरस-वीतरागरसरूप दशा होती है। ( विधि-निषेध के विकल्परूप— राग-द्वेषरूप परिणाम नहीं होते ) आहाहा! विशेष कहेंगे...

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )